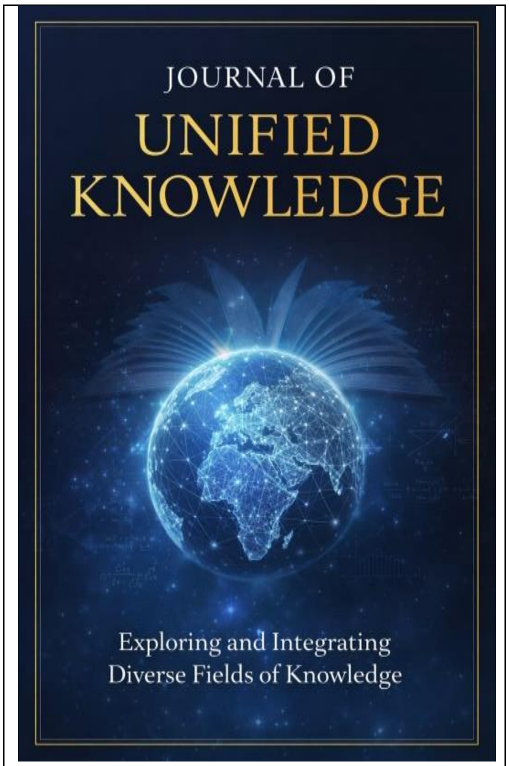

Corresponding author:
डॉ. नंदिनी कासलीवाल
शिक्षण सहायक
योग एवं जीवन विज्ञान विभाग
जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं

ISSN: 3139-227X
Submission: June 09, 2026
Review : June 23, 2026
Published : July 13, 2026

भारतीय दर्शन में योग परंपरा

डॉ. नंदिनी कासलीवाल
शिक्षण सहायक
योग एवं जीवन विज्ञान विभाग
जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं (राजस्थान)

योग एक शाश्वत विज्ञान है, ब्रह्म द्वारा निर्दिष्ट, ऋषियों, तपस्वियों तथा दार्शनिकों द्वारा अपनाई गई श्रेष्ठ साधना पद्धति है। योग एक चेतना परक विज्ञान है। यह विशेष ज्ञान जीवन के महत्त्वपूर्ण तथ्यों को दर्शाने व विभिन्न भौतिक और आध्यात्मिक उपलब्धियों को प्राप्त कराने वाला वह विज्ञान है जिसके माध्यम से शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, भावनात्मक स्तर पर ऊंचा उठा जा सकता है। योग के माध्यम से मनुष्य काम, क्रोध, मद, लोभ इत्यादि दुर्गुणों से ऊंचा उठकर श्रेष्ठ कार्यों की ओर प्रवृत्त हो सकता है। इसकी साधना पद्धतियों के माध्यम से समाधि तथा आत्म साक्षात्कार तक की स्थिति को प्राप्त किया जा सकता है।

संस्कृत में योग की व्युत्पत्ति 'युज्' धातु से मानी गई है। पाणिनी के गणपाठ में युज् धातु तीन बार प्रयुक्त हुई है। तदनुसार रुधादिगण में पठित 'युज्' धातु का अर्थ है- संयोग, दिवादिगण में उल्लिखित युज् धातु का अर्थ है समाधि और चुरादिगण में पठित युज् धातु का अर्थ है संयमन। इन तीनों अर्थों में वर्णित 'युज्' धातु में पंच प्रत्यय जोड़ने से 'योग' शब्द व्युत्पन्न हुआ है।[1]

1 संस्कृत हिन्दी कोश, पृ. 839

योग को परिभाषित करते हुए महर्षि पतंजलि ने कहा- **'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः**[2] अर्थात् "चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है।"

वेदों **योग**

वेद भारतीय परंपरा के प्राचीनतम ज्ञानस्रोत साहित्य हैं। इनमें मुख्य रूप से प्रकृति के देवताओं जैसे-जल, वायु, अग्नि, सूर्य आदि की प्रशंसा व अर्चना के मंत्र या प्रार्थनाएं वर्णित की गयी हैं। यह उचित ही है क्योंकि प्राचीन मानव प्रकृति पर इतना निर्भर था कि प्रकृति ही उसकी आराध्य थी। हिन्दू मानसिकता में वेदों का विशेष स्थान है। वेद किसी एक ग्रन्थ का नाम नहीं है बल्कि एक विशेष साहित्य श्रृंखला का नाम है जो लगभग 2000 वर्षों तक विकसित होती रही।[3] वेदों से लेकर पुराणों तक प्रायः सभी ग्रन्थों में योग विषयक सामग्री उपलब्ध होती है। वेदों में मंत्रों के द्वारा योग के रहस्यात्मक तथ्य को प्रस्तुत किया गया है।

वेदों के मंत्रों से यह स्पष्ट हो जाता है कि एक व्यापक शक्ति है जिसका अभेद ज्योति, परमपद, परमव्योम आदि नामों से ऋग्वेद में वर्णन मिलता है। इसी शक्ति से योग प्राप्त करने की कामना की गई है कर्मवाद का उल्लेख वेदों में प्राप्त होता है। वेदों के अनुसार अच्छे और बुरे कर्मों का उन्हीं के अनुरूप फल भोगना पड़ता है। देवता भी कर्म फल से छुटकारा नहीं पा सकते। वेदों में स्वतंत्र इच्छा शक्ति एक मान्यता के रूप में है। मुक्ति का उल्लेख भी वेदों में प्राप्त होता है जो योग का परम लक्ष्य है।

उपनिषदों में योग

मौलिक उपनिषद् (ईसा पूर्व 700-600) क्रमशः संहिताओं, ब्राह्मणों तथा आरण्यक ग्रन्थों से सम्बद्ध हैं और इन्हें वैदिक साहित्य का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण अंश माना जाता है। 'उपनिषद्' (उप+निषद्) शब्द से तात्पर्य ऐसे

---

2 पातञ्जल योगदर्शन, 1/2

3 योग एवं यौगिक चिकित्सा पृ. 4 प्रो. रामहर्ष सिंह

गोपनीय ग्रंथ या प्रशिक्षण पद्धति से है जिसमें अत्यन्त संयमशील तथा ज्ञानपिपासु शिष्य सद्गुरु के अत्यन्त निकट बैठकर मोक्षज्ञान प्राप्त करता था। इस प्रकार गुरु-शिष्य के अत्यन्त अन्तरंग आदान-प्रदान के माध्यम से विकसित ज्ञान का संग्रह उपनिषदों में है। इसलिए इन्हें उपनिषद् कहा जाता है। उपनिषदों की विषयवस्तु का निचोड़ है- आत्मन्- ब्राह्मन् एकत्व। 'ब्रह्मन्' शब्द सृष्टि के सारतत्त्व का निर्देश करता है, जबकि 'आत्मन्' शब्द मनुष्य के सारतम तत्त्व की ओर संकेत करता है। उपनिषद् इस तथ्य का उद्घोष करते हैं कि आत्मन् व ब्राह्मन् दोनों एक ही हैं, वे अलग-अलग नहीं हैं। वह ब्रह्म ही है। केवल ब्रह्म ही सत्य है। शेष सब मिथ्या है। इस तथ्य की अनुभूति ही योग है।[4]

कठोपनिषद् में योग की परिभाषा है-

यदा पंचावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहुः परमां गतिम्।।[5]

अर्थात् जब पांचों इन्द्रियां मन के साथ स्थिर हो जाती हैं और बुद्धि भी कोई चेष्टा नहीं करती, उस स्थिति को परमगति कहते हैं। इन्द्रियों की स्थिर धारणा योग की अवस्था है। इस स्थिति को प्राप्त हुआ योगी प्रमाद रहित हो जाता है।

योग का उपनिषदों में मनुष्य जीवन हेतु बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। योग के महत्त्व को दर्शाते हुए कठ- उपनिषद् में कहा गया है-

तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणम्।
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ।।[6]

4 योग एवं यौगिक चिकित्सा, प्रो. सिंह रामहर्ष, पृ. 52 १

5 कठोपनिषद्, 2/3/10

6 कठोपनिषद्, 2/9/11

इन्द्रियों की स्थिर धारणा अर्थात् उनके संयम को भी योग कहते हैं। इसके साधन को रोकने वाला साधक प्रमाद रहित हो जाता है और शुभ संस्कारों का उदय होने लगता है।

श्वेताश्वतरोपनिषद् के द्वितीय अध्याय में क्रियात्मक योग का स्पष्ट एवं विस्तार से वर्णन मिलता है। इसमें षडंग योग का वर्णन करते हुए कहा गया है कि शरीर को गिरुन्नत अर्थात् छाती, गर्दन और सिर उन्नत व सम करके मन सहित इन्द्रियों को हृदय में समावेश करके ब्रह्मरूप नौका से विद्वान् लोग सभी भयानक प्रवाहों को तर जाते हैं। इस शरीर में प्राणों को अच्छी तरह निरोध करके युक्तचेष्ट होकर और प्राण के क्षीण होने पर नासिका द्वार से श्वास छोड़ते हुए और इन दुष्ट घोड़ों की लगाम रूपी मन को विद्वान् अप्रमत्त होकर धारण करते हैं[7] तथा ध्यान रूप मंथन से अत्यन्त गूढ़ आत्मा को दर्शन करें। इस प्रकार उपनिषदों में प्रयुक्त 'योग' शब्द आध्यात्मिक अर्थ को प्रकाशित करने के साथ-साथ ध्यान, तप, समाधि आदि के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है।[8]

कठ, मुण्डक, श्वेताश्वतर, वृहदारण्यक तथा छान्दोग्योपनिषद् आदि के अतिरिक्त भी ऐसे बहुत से उपनिषद् हैं जिनमें योग की पर्याप्त चर्चा की गई है जिसे "योगोपनिषद संग्रह" के नाम से जाना जाता है। इन उपनिषदों की संख्या 20 (बीस) है। इनके अतिरिक्त योगराजोपनिषद् को भी योग का आर्ष ग्रन्थ माना गया है।[9]

योगवाशिष्ठ में योग

योगवाशिष्ठ महारामायण के नाम से भी जाना जाता है। इस ग्रंथ में महर्षि वशिष्ठ के द्वारा श्री रामचन्द्र जी को दिये गये आध्यात्मिक उपदेशों का बहुत सरल भाषा में वर्णन किया गया है। इसके दार्शनिक सिद्धान्त बहुत सूक्ष्म व गहन हैं। योगवाशिष्ठ योग शब्द का अर्थ इस प्रकार करता है कि इस संसार

---

7 श्वेताश्वतरोपनिषद्, 2/8/9

8 श्वेताश्वतरोपनिषद्, 7/6/1

9 कल्याण (योगतत्वांक) अप्रैल 91, पृ.

सागर से पार होने की युक्ति का नाम ही योग है। महर्षि वशिष्ठ कहते हैं कि योग के द्वारा मनुष्य अपने असली स्वरूप सच्चिदानन्द का अनुभव कर लेता है। योग का ध्येय वह तुरीया नामक परम आत्मिक स्थिति है जिसमें जागृत स्वप्न सुषुप्ति अवस्थाओं में से किसी का भी अनुभव न हो और न ही इनके आगामी अनुभव का बीज ही रहे जिसमें निरन्तर परमानन्द का अनुभव होता रहे।[10]

योग के तीन प्रभेद हैं-

1. एक तत्त्व की दृढ़ भावना
2. मन की शान्ति
3. प्राणों के स्पन्दन का निरोध।[11]

1. एक तत्त्व की दृढ़ भावना द्वारा मन शान्त होता है और आत्मा में विलीन हो जाता है। इसका अभ्यास तीन प्रकार से किया जाने का विधान है।[12]

ब्रह्म भावना-इसमें यह निश्चय हो जाता है कि संसार भर में केवल एक ही अनन्त आत्म तत्त्व है और सब पदार्थ उसी तत्त्व के नाना नामरूप हैं।

- अभाव भावना- पदार्थों को अत्यन्त समझकर उनके पारमार्थिक अभाव की दृढ़ भावना करना।

- केवली भाव- वह अवस्था जिसमें योगी स्वयं द्रष्टा होने को भी असत समझकर अपने उस आत्मस्वरूप में स्थित हो जाता है जिसमे द्वैत का कोई भाव ही नहीं होता।

2. मनोलय- योगवाशिष्ठ के अनुसार मन ही संसार को उत्पन्न करने वाला और चलाने वाला है। मन के शान्त हो जाने पर परम शक्ति आ जाती है

---

10 योगवाशिष्ठ, 6/1/13/36/1/128/50-51

11 योगवशिष्ठ (निर्वाण-प्रकरण) 68/48

12 योगवशिष्ठ (निर्वाण-प्रकरण) 61/47

व संसार का लोप हो जाता है। मन के शान्त होने पर जीवन ब्रह्मत्व को प्राप्त हो जाता है। बिना उचित युक्ति के मन को जीतना कठिन है। जो लोग उचित युक्तियों को छोड़कर हठपूर्वक मन को जीतना चाहते हैं। उन्हें अनेक क्लेश व भय प्राप्त होते हैं।[13]

3. प्राण निरोध- योगवाशिष्ठ में योगाभ्यास की तीसरी विधि है जिस प्रकार पंखे का हिलना बंद होते ही हवा का मिलना बंद हो जाता है उसी प्रकार प्राण के निरुद्ध होने से मन शांत हो जाता है। मन की शांति तो प्राण की शांति।

प्राण विद्या के अतिरिक्त योगवाशिष्ठ में कुण्डलिनी विद्या का भी विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। यहां कहा गया है कि कुण्डलिनी विद्या का ज्ञान होने पर उनके द्वारा योगी अनेक प्रकार की सिद्धियां प्राप्त कर सकता है। संसार के अनुभव से मुक्ति पाने और परमानन्द का अनुभव प्राप्त करने के योग नामक मार्ग की योगवाशिष्ठ के अनुसार सात भूमिकाएं हैं- 1. शुभेच्छा 2. विचारणा 3. तनुमानसा 4. सत्वापति 5. असंसक्ति 6. पदार्थ भावनी 7. तुर्गया।[14]

इस प्रकार योगवाशिष्ठ में योग विद्या को सरस व सरल रूप में प्रस्तुत किया गया है।

गीता में योग

गीता भारतीय आध्यात्मिक ग्रंथों में बहुत अधिक महत्वपूर्ण ग्रंथ माना जाता हैं। गीता की महता इस बात से सिद्ध होती है कि संसार की सर्वाधिक भाषा में गीता का अनुवाद हुआ है। इस प्रकार गीता संसार का प्रसिद्ध ग्रंथ है। गीता में सभी प्रकार की विद्याएं विद्यमान हैं। मनुष्य जीवन में प्रत्येक अंग को गीता में वर्णित किया गया। सभी विषयों के साथ गीता में योग को विशेष स्थान दिया गया है। यह इस बात से सिद्ध होता है कि गीता के प्रत्येक अध्याय

---

13 योगवाशिष्ठ, 5/91/40

14 योगवाशिष्ठ, 5/78/115-16

के नाम के साथ योग शब्द जोड़ा गया है। गीता में जगह-जगह योग और योगी शब्द का प्रयोग किया गया है।

गीता में योग कि विभिन्न परिभाषायें दी गई हैं। द्वितीय अध्याय में 48वें श्लोक में योग की परिभाषा देते हुए कहा गया है-

योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्ध्यसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।।[15]

अर्थात्- हे अर्जुन! तुम कर्मफलों की आसक्ति त्यागकर समबुद्धि होकर कर्म करो। कर्म में जिसकी बुद्धि समान रहती है, वही योग की अवस्था है, अर्थात् योग साधक का चित्त सुख में, दुःख में, लाभ-हानि में, जय-पराजय में, शीत ऊष्ण, भूख-प्यास आदि सभी द्वंद्वों में समान बना रहता है। बुद्धि का यह समभाव योग है।

गीता में विभिन्न योग पद्धतियों का समन्वय दिखाई पड़ता है जिनका उद्देश्य प्रमुखतः एक ही है। इसमें कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, समत्वयोग, ध्यानयोग आदि का वर्णन है। इनके प्रमुख तीन उद्देश्य हैं- 1. जीवात्मा का साक्षात्कार 2. विश्वात्मा का साक्षात्कार और 3. ईश्वर-साक्षात्कार[16]

यथा दीपो निवातस्थो नें गते सोपमा स्मृता।
योगिनो यतचित्तस्य युंजतो योगमात्मनः।।[17]

जिस प्रकार वायु रहित स्थान में स्थित दीप चलायमान नहीं होता वैसा ही उपमा परमात्मा के ध्यान में लगे हुए योगी के जीते हुए चित्त की कही गई है

15 गीता 2/48

16 कल्याण, साधनांक, वर्ष 15, पृ. 575

17 गीता, 6/19

शंकराचार्य ने अपने भाष्य में लिखा है कि गीता ज्ञानयोग का प्रतिपादन करती है।[18] तिलक के अनुसार गीता कर्मयोग का प्रतिपादन करती है क्योंकि यह प्रमाणित है कि गीता में योग शब्द प्रवृतिमार्ग अर्थात् कर्मयोग के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।[19] अतः गीता को कर्मयोग शास्त्र कहना कोई अनुचित नहीं है। इसी प्रकार रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य, श्री बल्लभाचार्य के अनुसार गीता का मुख्य विषय भक्तियोग है।[20] इन सबकी एक जगह संयोजित करते हुए डॉ. राधाकृष्णन् ने कहा है कि गीता में प्रतिपादित, ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग ये तीनों एक दूसरे के पूरक हैं।[21] गीता के छठे अध्याय में कहा गया है कि जो व्यक्ति समभाव में स्थित होकर राग-द्वेषादि से शून्य होकर पूरे विश्व में अपनी आत्मा के समान ही सबके सुख-दुःख की भावना करता है। किसी के भी प्रतिकूल आचरण नहीं करता, वही सर्वश्रेष्ठ सिद्धयोगी है।[22]

जैन योग परंपरा

योग की परिभाषा देते हुए जैन आचार्य 'यशोविजय' अपने ग्रंथ 'द्वात्रिंशिका' में कहते हैं-

'मोक्षेण योजनादेव योगो'[23]

अर्थात् जो मोक्ष के साथ योजित करता है वह योग है

यही बात श्री 'हरिभद्रसूरि' अपने ग्रंथ 'योगविंशिका' में इस प्रकार कहते हैं-

मुक्खेण जोयणाओ जोगो जोगो सव्वो वि धम्मवावारो

---

18 गीता, (शांकरभाष्य) 2/22
19 गीता रहस्य, पृ. 60
20 गीता, (रामानुजाचार्य) 1/1
21 गीता, (राधाकृष्णन्) 1/1
22 गीता (शांकर भाष्य), 6/32– **आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।**
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः।

23 द्वात्रिंशिका 10/1

परिसुद्धो विन्नेओ, ठाणाइगओ विसेसेण।।[24]

अर्थात् जितने भी योग सम्बंधी धर्म व्यापार हैं वे मोक्ष के साथ योजित करने वाले हैं। अतः इसे परिशुद्ध योग कहा गया है। भाव है कि जिन-जिन साधनों से आत्मा की शुद्धि और मोक्ष का योग होता है, उन सभी साधनों को योग कहते हैं।

जैन दर्शन में तीन प्रकार का योग बताया गया है जिन्हें त्रिरत्न के नाम से जाना जाता है। यथा-

1. सम्यक् दर्शन
2. सम्यक् ज्ञान
3. सम्यक् चारित्र[25]

सम्यक् दर्शन- इन तीनों को मोक्ष प्राप्ति का कारण होने से योग माना गया है। किसी भी कार्य को करने के लिए या किसी भी वस्तु की प्राप्ति के लिये उन पर अटल श्रद्धा का होना अनिवार्य है। इसलिये योग के लिए जो-जो आवश्यक है उन पर तथा जो योगी हुए हैं, उन पर परीक्षा पूर्व श्रद्धा को जैन दर्शन में 'सम्यक् दर्शन' नाम दिया गया है-

तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग् दर्शनम्[26]

सम्यक् ज्ञान- केवल विश्वास श्रद्धा से ही कुछ नहीं होता, विश्वास के साथ-साथ जिस मार्ग पर हम चलते हैं उसके सभी साधनों को, सभी रहस्यों को स्वतः से जानना भी आवश्यक हैं। इसी को जैन- दर्शन में 'सम्यक् ज्ञान' कहते हैं।

24 योगविंशिका,गाथा– 1 पृ. 15

25 योगशास्त्र,1/15

26 तत्त्वार्थसूत्र 1-2

सम्यक् चारित्र- श्रद्धा और ज्ञान तब तक फलीभूत नहीं हो सकते जब तक साधक का चरित्र शुद्ध नहीं होता और जब तक मन में राग, द्वेष, मोह आदि दुर्गुण रहेंगे तब तक अध्यात्म मार्ग पर चलना बहुत कठिन है। साधक का आचार-विचार व्यवहार सभी शुद्ध होना चाहिए। इसी को जैन दर्शन में सम्यक चरित्र का नाम दिया है बिना चरित्र के ज्ञान और श्रद्धा दोनों निरर्थक हैं। महर्षि पतंजलि ने भी इसीलिये अपनी साधना पद्धति में सर्वप्रथम यम और नियम को स्थान प्रदान किया है। यम और नियम से चरित्र की शुद्धि होती है।

इस योग साधना के लिए जैन मत में 'अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, नामक पांचों व्रतों का वर्णन किया गया है। जैन दर्शन में दस धर्मों का पालन बताया गया है- 1. क्षमा 2. मृदुता 3. सरलता 4. शौच 5. सत्य 6. संयम 7. तप 8. त्याग 9. आकिंचन्य और 10. ब्रह्मचर्य। जैन दर्शन कहता है कि इनके पालन करने से कर्म का प्रवेश रुक जाता है। इस कर्म को भी जैन दर्शन में भावी जन्म का कारण माना गया हैं। इन धर्मों के पालन से कर्म भावी जन्म का कारण नहीं बनता है। इसलिये इन्हें योग साधना के रूप में मान्यता दी गई है।

बौद्ध परंपरा में योग-

बौद्ध साहित्य में योग के स्थान पर 'ध्यान' और 'समाधि' शब्दों के प्रयोग मिलते हैं। बोधित्व प्राप्त करने से पूर्व बुद्ध ने स्वयं श्वासोच्छ्वास के निरोध का अभ्यास किया या व अपने शिष्य अग्गिवेस्सन से कहते भी है कि "मै श्वासोच्छ्वास का निरोध करना चाहता या इसलिए मैं मुख, नाक, कर्ण में से निकलते हुए सांस को रोकने का प्रयत्न करता रहा" परंतु यह प्रयत्न करने के उपरान्त भी उन्हें समाधि प्राप्त नहीं हुई। इसलिए बोधित्व प्राप्त होने के बाद तथागत बुद्ध ने हठयोग की साधना का निषेध किया और आर्य आष्टांगिक मार्ग का उपदेश दिया। आष्टांगिक मार्ग के आठवें अंग 'समाधि' का विशेष महत्त्व है। उसे 'सम्यक्- समाधि' नाम दिया है।

'सम्यक् समाधि' को प्राप्त करने के लिए चार प्रकार के ध्यान का वर्णन किया गया है।[27]

1. वितर्क विचार- प्रीति- सुख- एकाग्रता सहित।
2. प्रीति- सुख- एकाग्रता सहित।
3. सुख एकाग्रता सहित।
4. एकाग्रता- सहित।

बुद्ध प्रज्ञा को सर्वात्म मानते हैं। उनका कहना है कि 'प्रज्ञा' के बिना प्रेम व परोपकार संभव नहीं है यदि ऐसा हो भी तो वह प्रज्ञा- स्थिति नहीं है। जीवन में सदाचार का बहुत महत्त्व है।[28] बौद्धों के शील में पतंजलिसम्मत यम-1-नियम का समावेश हो जाता है। बौद्ध 'समाधि' में योगसूत्र वर्णित प्राणायाम धारणा, ध्यान और समाधि का समावेश है। बौद्ध परंपरा द्वारा 'प्रज्ञा और योगसूत्र' में वर्णित 'विवेक ख्याति' में अर्थ साम्य है। बौद्ध साहित्य में वर्णित योग अन्य परंपराओं से कहीं शब्द से, कहीं अर्थ से कहीं प्रक्रिया से साम्य रखता है।[29]

ज्ञान प्राप्त व साधना प्राप्त करने वाले योगी काम सेवन में लिप्त नहीं हो और न ही शरीर को कष्ट दें। बौद्ध धर्म में यह रास्ता 'मध्यम- प्रतिपदा' के नाम से जाना जाता है।[30] प्रतिपदा का दूसरा नाम ही आर्य अष्टांगिक मार्ग है। अष्टांगिक मार्ग के आठ अंग निम्नलिखित हैं- 1. सम्यक्-दृष्टि, 2. सम्यक्-संकल्प, 3. सम्यक्-वाक्, 4. सम्यक्-कर्मान्त, 5. सम्यक्-आजीव, 6. सम्यक्-व्यायाम, 7. सम्यक्-स्मृति, 8. सम्यक्समाधि।

---

27 अंगुतरनिकाय, 63, संयुक्तनिकाय, 5 / 1, दीघनिकाय, 1 / 2, पृ. 28, 29

28 कल्याण (योगतत्वांक) अप्रैल 91, पृ.282

29 जैन योगः एक परिशीलन, पृष्ठ 64

30 महावग्गो, पृ. 13

योग वास्तव में एक वैज्ञानिक जीवन शैली है जिसका हमारे जीवन के प्रत्येक पक्ष पर तौर पर सन्यासियों की या योगियों की विद्‌या न रह कर पूरे समाज तथा प्रत्येक व्यक्ति के लिए आदर्श पद्‌धति बन चुकी है। आज योग एक सुव्यवस्थित व वैज्ञानिक जीवन शैली के रूप में प्रमाणित हो चुका है। प्रत्येक मनुष्य अपने स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए भी योग को प्रारंभ कर रहा है। योग को वर्तमान जीवन में एक अभिन्न अंग के रूप में स्वीकार किया गया है।